इकाई 6 अनुसंधान संरचनाः सिद्धान्त और अवधारणाएँ

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना

लक्ष्य और उद्देष्य

6.2 अवधारणाओं का अर्थ

6.3 अमूर्तता की अवधारणा

6.4 अवधारणाएँ और संचारण

6.5 उपयुक्त अवधारणाओं की विशेषताएँ

6.6 पुनःसंप्रत्ययीकरण

6.7 सिद्धान्त

6.7.1 सिद्धान्त की परिभाषा

6.7.2 सिद्धान्त की भूमिका : अवस्थिति के रूप में सिद्धान्त

6.7.3 संप्रत्ययीकरण और वर्गीकरण के रूप में सिद्धान्त

6.7.4 सिद्धान्त का एक अन्य कार्य : संक्षेपण

6.7.5 सिद्धान्त और तथ्य भविष्यवाणी

6.7.6 सिद्धान्त ज्ञान के मार्ग की दरारों का संकेत देते हैं

6.8 निगमन एवं आगमन

6.9 सिद्धान्त प्रमाणित करने के मार्ग में कठिनाइयाँ

6.10 सारांष

6.11 बोध प्रष्न

6.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.1 प्रस्तावना

चूँकि विज्ञान अपनी अमूर्त सोच के माध्यम से व्याख्या क्रम में, यथार्थ के विभिन्न पहलुओं की जाँच करती है, इस कारण यह चकित करने की बात नहीं है कि वह अपने परिणामों का संचारित करने हेतु अपने शब्दों अथवा अवधारणाओं को विकसित करता होगा। शायद इसी कारण हम विज्ञान की सैद्धान्तिक प्रणाली को उसकी अवधारणीय प्रणाली भी बता सकते हैं। इन शब्दों में हम तत्वों, अथवा तत्वों के पहलुओं का प्रयोग कर उनकी जाँच कर सकते हैं। फलस्वरूप जब हम किसी प्रतिज्ञप्ति को निर्मित करते हैं, तब हम अध्ययन करने वाले तत्वों को अवधारणाओं के रूप में संकेतकों में प्रयोग करते हैं तथा इन अधःस्थ तत्वों को एक–दूसरे के सम्बन्ध में अध्ययन कर रहे होते हैं। क्योंकि हम अवधारणाओं के साथ प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित होते हैं, इस कारण अवधारणाओं को तत्वों में और तत्वों को अवधारणाओं के रूप में समझ लेना स्वाभाविक हैं।

अतः अनुसंधान ढाँचे में पहला अनिवार्य पहलू अवधारणाओं का परिवर्धन है। हम सिद्धान्तों के अतिरिक्त तथ्यों की बात करते हैं, हमें यह जानना चाहिए कि तथ्य अवधारणाओं से बनते हैं जो सिद्धान्त के लिए इमारतों के खण्डों के रूप में कार्य करते हैं अर्थात् निर्माण तत्वों का कार्य करते हैं। वास्तव में, तथ्य

और अवधारणा स्पष्टतया भिन्न होते हैं। ब्राडबैक का कहना है कि एक अवधारणा एक विवरणात्मक गुण अथवा सम्बन्ध का एक संकेत है जबकि तथ्य किसी अवधारणा के एक उदाहरण अथवा किन्हीं उदाहरणों का संकेत होता है। "वास्तविकता एक जीवनहीन जाल की भांति है : कोई भी कृति अपने आप किन्हीं श्रेणियों में विभाजित नहीं होती, वह तो निर्मित होती हैं अर्थात बनानी होती है। यद्यपि, सिद्धान्तों को उपयुक्त विकसित अवधारणाओं पर बनाना पड़ता है, अवधारणाओं को कभी भी मुकम्मल रूप से सदा के लिए विकसित अथवा परिभाषित नहीं किया जा सकता, यद्यपि किसी अमुक क्षेत्र में निरंतरता से चल रहे पहले के कार्य द्वारा उपलब्ध होती/रहती है। सिद्धान्त निर्माण में एक मुख्य मुष्किल जड़ स्वीकृत अवधारणाओं द्वारा पनपती है क्योंकि ऐसी अवधारणाएँ पूरी तरह से तत्वों को सम्मिलित नहीं कर पातीं जिनपर सर्वेक्षक, वर्णन अथवा विश्लेषण हो रहा होता है। तथापित अवधारणाओं और परिभाषाओं को इस रूप में सुनिष्चित करना ज़रूरी होता है क्योंकि वह किसी सिद्धान्त के जीवन में सदैव और निरंतर बने रहते हैं।

लक्ष्य और उद्देष्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपः

- अवधारणाओं का अर्थ और सामाजिक अनुसंधान में उनका क्या महत्व होता है इसके बारे में समझ सकेंगे; और
- सिद्धान्त और अनुसंधान ढाँचे में उसकी क्या भूमिका होती है इसके बारे में जान सकेंगे।

6.2 अवधारणाओं का अर्थ

एफ. एन. किरलिंगर ने अवधारणा की परिभाषा करते हुए कहा है कि अवधारणा विशेषों से पनपे सामान्यीकरण के अमूर्तकरण को अभिव्यक्त करती है। परिभाषा का संकेत इस तथ्य की ओर है कि वास्तविकता न केवल अवधारणाओं से बनती है बल्कि वास्तविकता एक वैज्ञानिक की अवधारणाओं को प्रभावित भी करती है। वह बताता है कि एक रचना अवधारणा होती है जिसे विशेष आनुभाविक उद्देष्यों के लिए बनाया जाता है। एक विशेष प्रकार की अवधारणा जिसमें स्वेच्छाचारिता तथा सम्बद्धता की विशेषताएँ वास्तविक संसार से जुड़ी होती हैं, वह एक "आदर्ष" प्रकार की तार्किक रचना होती है जो किसी संस्था अथवा घटना के महत्वपूर्ण पहलुओं की पहचान और उनके वर्णन उनका उद्देष्य होते हैं। आदर्ष प्रकार की अवधारणा वास्तविकता में नहीं होती है, परंतु इस रूप में आदर्ष होती है कि उस से सम्बन्धित सामाजिक जीवन एक अमूर्त, प्रबलन और उसका विस्तार होता हैं। वस्तुतः ऐसे आदर्ष रूप की अवधारणा तत्वों को आँकने और समझाने के लिए आधार का कार्य करती है। कभी–कभी "आदर्ष" प्रकार की अवधारणा एक रूप से नितांत तथा ध्रुवीय प्रकार की कही जाती है, विशेषतया तब जब उसे विपरीत के युग्मों के साथ देखा जाता है।

आँकड़ों और उनसे निकाले गए सामान्यीकरण सिद्धान्त निर्माण प्रक्रिया में साथ–साथ रहते/होते हैं। जैसे–जैसे एक शोधकर्ता अपनी सामग्री/आँकड़ों में सम्बन्ध जोड़ने लगता है अथवा एक निष्चित प्रकार की घटनाओं अथवा व्यवहार शैलियों को अलग करने का प्रयास करता है तथा उनके लक्षण बताता है, वह उनसे कुछेक अमुक प्रकार के अमूर्त पद निकालता है जो उन घटनाओं, शैलियों और लक्षणों का प्रतिनिधित्व करते हैं। यंग के अनुसार, "आँकड़े/सामग्री का प्रत्येक नया समूह, जिसे निष्चित विशेषताओं के आधार पर दूसरे समूहों से अलग किया जाता है, इसको एक नया नाम, जो अवधारणा के रूप में एक संकेत दिया जाता है। वास्तव में, एक अवधारणा तथ्यों के एक वर्ग अथवा एक समूह की एक संक्षिप्त परिभाषा है। "कक्षा–पलायन", "आक्रमण", "कुण्ठा", "अभिवृत्ति", "जीव",

"उत्सुकता" आदि सभी ऐसी अलग–अलग अवधारणाएँ हैं जिनमें सामान्य श्रेणी के दायरे में आने वाली अनेक घटनाएँ और तत्व सम्मिलित होते हैं। गुडे तथा हाट के शब्दों में, "एक तथ्य की भाँति प्रत्येक अवधारणा एक अमूर्तता है, तत्व नहीं। यह विचारण ढाँचे से अपना अर्थ प्राप्त करती है जिसमें वह समाहित होती है।"

एक अन्य बिन्दु का स्पष्ट किया जाना ज़रूरी है। क्योंकि सभी अवधारणाएँ अमूर्तकरणीय होती हैं क्योंकि वह वास्तविकता के किन्हीं पहलुओं का प्रतिनिधित्व करती हैं, इस कारण यह जानना ज़रूरी होता है कि इनका विकास कैसे होता है। इसे संप्रत्ययीकरण की प्रक्रिया कहा जाता है। गुडे तथा हाट्ट ने इस प्रक्रिया को दो उपशीर्षकों में विवेचित किया हैः अमूर्तता के रूप में अवधारणा तथा अवधारणा एवं संचारण।

6.3 अमूर्तता की अवधारणा

अनेक बार यह भुला दिया जाता है कि अवधारणाएँ तार्किक रूप की ऐसी रचनाएँ होती हैं जो चेतन मुद्राओं, अनुबोधकों अथवा जटिल प्रकार के अनुभवों से पनपती हैं। यह प्रवृत्ति कि अवधारणाएँ तत्वों के रूप में अस्तित्व में होती हैं, अनेक भ्रान्तियों को पैदा करती हैं। अवधारणा तत्व/तथ्य नहीं होती अर्थात इस प्रकार की तार्किक रचनाएँ उल्लेखित सान्दर्भिक दायरे के बाहर अस्तित्व में नहीं हो सकती। यह एक प्रकार से अमूर्त रूप में देखने की गलती है जब हम अमूर्तता को वास्तविक तथ्य समझ लेते हैं। यह एक ऐसी सामान्य गलती है जिसे हम में से अधिक लोग अनेक बार करते रहते हैं।

चूँकि तथ्य और अवधारणाएँ अमूर्त होते हैं, उनका अर्थ किसी संदर्भ के दायरे में ही होता है, किसी सैद्धान्तिक व्यवस्था के अंतर्गत। तथ्य और अवधारणा में भेद यह होता है कि अवधारणाएँ अनुभवजन्य सम्बन्धों तथा तथ्यों का संकेत होते हैं। अतः तथ्य अवधारणाओं के बीच एक सम्बन्ध को उल्लेखित करता है क्योंकि प्रत्येक तत्व किसी तथ्य का ही वर्णन करता है। इस दृष्टि से, एक तथ्य अवधारणाओं की एक तार्किक रचना होती है। दूसरी ओर एक अवधारणा अनेक सचेतन मुद्राओं अथवा अनुबोधकों से अमूर्त रूप में पनपता है। संप्रत्ययीकरण की प्रक्रिया किन्हीं सचेतन मुद्राओं का अमूर्तीकरण और सामान्यीकरण है। इस प्रकार उद्देष्यों की विशेषताओं के अध्ययन, आयोजन और पृथक्करण को तोड़ना–मोड़ना संभव होता है। चिन्तन से ही इन विशेषताओं को अलग किया जा सकता है तथा इसके द्वारा ही इन विशेषताओं को नाम दिया जा सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संप्रत्ययीकरण के लिए चिन्तन अनिवार्य है।

6.4 अवधारणाएँ और संचारण

अवधारणाएँ वैज्ञानिक पद्धति के लिए मात्र मौलिक नहीं होती हैं। वह तो समस्त मानव संचारण एवं विचारों द्वारा निर्मित होती हैं क्योंकि विज्ञान संचारण में अपेक्षाकृत अधिक सुस्पष्टता की माँग करता है, इस कारण संप्रत्ययीकरण की प्रक्रिया सचेत रूप से विज्ञान का अंष होनी चाहिए, न कि सामान्य सूझ–बूझ और संदर्भ की परिस्थितियों में, जैसा कि आमतौर पर समझा जाता है। जब तक एक वैज्ञानिक ऐसे सम्बन्धों तथा संप्रत्ययीकरण के अमूर्त स्वरूप से सचेत होता है, उस सीमा तक वह अमूर्तता की भूल से दूर रह पाता है।

विज्ञान में अवधारणाओं का एक विशेष रूप से संचारित होना ज़रूरी होता है। अपने सभी घटकों की भाँति अवधारणाओं को अस्पष्ट रूप से संवेदनों तक सीमित नहीं समझा जाना चाहिए। ऐसी संरचना से तत्वों को उभारना तथा उन्हें स्पष्ट करना एक अमुक परिभाषा के मुख्य लक्षण होते हैं जो किसी

भी संप्रत्ययीकरण की सामान्य समस्या के लिए मौलिक समझे जाते हैं। सूझ–बूझ प्रारंभ तथा संसार को वैज्ञानिक रूप से देखने में भेद होता है जो वैज्ञानिकता में दिखाई देती है। ऐसी परिभाषा विज्ञानों में संचारण की प्रक्रिया को सरल रूप से व्यक्त करती है, परंतु यह वैज्ञानिक अवधारणाओं को सामान्यतया समझने में बाधाएँ भी प्रस्तुत करती है। वस्तुतः यह एक सामान्य षिकायत है कि विज्ञान "बड़े–बड़े शब्दों" का प्रयोग करता है। कुछ आलोचक इतने सनकी होते हैं कि वह यह कहना शुरु कर देते हैं कि विज्ञान अनेकाक्षरों को इस प्रकार तोर–मरोड़ करता है कि किसी को यह समझ नहीं आता कि क्या कहा जा रहा है। ऐसी ही षिकायत वैज्ञानिक भी एक–दूसरे के विरुद्ध व्यक्त करते रहते हैं। अनेक विज्ञान ऐसे तथ्यों पर निर्भर करने लगते हैं जो इतने अमूर्त और जटिल होते हैं जिन्हें कोई एक वैज्ञानिक उन सबको जान ही नहीं पाता। क्योंकि ऐसा प्रत्येक तथ्य विभिन्न प्रकार के तत्वों से सम्बन्धित होता है, इस कारण कुछेक तथ्यों को संचारित करने हेतु विभिन्न प्रकार की वैज्ञानिक शब्दावलियों को विकसित करना पड़ता है। इन विभिन्न विज्ञानों में भेद अलग–अलग होते हैं जो इस तथ्य पर निर्भर करता है कि सन्दर्भित प्रारूपों में कितनी निकटता और सम्बन्ध है।

6.5 उपयुक्त अवधारणाओं की विशेषताएँ

वैज्ञानिक अनुसंधान में अवधारणाओं का प्रयोग विशेष उद्देष्य से इस प्रकार किया जाता है कि प्रत्येक अवधारणा में कुछ भाव निहित हो सकें। अवधारणाएँ विषय की शब्दावली होती हैं। एक उपयुक्त अवधारणा के कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित हैंः

- अवधारणा स्पष्ट और सुनिष्चित होनी चाहिए। कहने का भाव यह है कि एक अवधारणा परिषुद्ध हो।
- अवधारणा विस्तृत हो और अपनी सोच–समझ और निर्मित व्यवस्था में सुस्पष्ट हो।
- अवधारणा में बहु–अर्थ के भाव नहीं होने चाहिए। जहाँ तक संभव हो एक अवधारणा जो संदेष देना चाहती है, उसमें वह पूर्ण रूप से सटीक होना चाहिए।

6.6 पुनःसंप्रत्ययीकरण

अवधारणा के अर्थ बदल सकते हैं अथवा बदलते रहते हैं। प्रत्येक विज्ञान अपने शब्दों को अपने ज्ञान–भण्डार के अंतर्गत लगातार संषोधित करता है। एक अवधारणा के किसी निर्देष्य के विषय में हम जितना अधिक जानने लगते हैं, उसकी अवधारणा को उतना अधिक रूप से परिभाषित करते रहते हैं। परंतु यदि किसी परिभाषा का कोई अलग मतलब उभरता है तो उसके परिणामस्वरूप हुए परिवर्तन से एक छात्र उतना अधिक चकराता है।

अवधारणा के अर्थ में ऐसे परिवर्तन का एक स्रोत विज्ञान में विकसित उसके परिवर्तीय फोकस से उभरता है। एक जैसी अवधारणा के उन सभी विभिन्न पहलुओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए जो उस अवधारणा के रहते उसके अर्थ में परिवर्तन पर बल देते हैं। अतः एक अवधारणा जिन पर किसी तथ्य जिनपर कार्य हो रहा है, वैज्ञानिकों के अनुभव अनुरूप विकसित होती रहती है। जैसे–जैसे अनुभव बढ़ते रहते हैं, ऐसा देखने में आया है कि मूल अवधारणा में बहुत कुछ बढ़ जाता है तथा शोध से प्राप्त अनुभवों के माध्यम से अनेक अवधारणाएँ प्रयोग में उभरी दिखाई देती हैं। अतः "स्तर" के साथ अन्य अनेक शब्द जैसे कोटि, "रैंक", "भूमिका", तथा स्थिति आदि आदि भी प्रयोग में लाए जाते हैं।

वस्तुतः स्थिति अस्त–व्यस्तता जैसी नहीं होती। ऐसी अनेक समस्याएँ उभरती रहती हैं, परंतु जैसे जैसे विज्ञान विकसित होता रहता है, वैसे–वैसे एक अवधारणीय कठिनाई के स्थान पर दूसरी कठिनाई भी बढ़ती रहती है। एक कठिनाई दूसरी कठिनाई का स्थान लेती जाती है, परंतु यह तो संचारण की विशेषता है क्योंकि जिन वस्तुओं की चर्चा की जाती है, वह बदलती रहती हैं। वैज्ञानिकों द्वारा ऐसी संभ्रान्तियाँ अवष्य बढ़ती रहती हैं जो वस्तुतः संयुक्त अनुसंधान और वार्ताओं द्वारा हल भी हो जाती हैं। इस के अतिरिक्त निम्नलिखित कुछेक तर्कों/तथ्यों को ध्यान में रखा जाना चाहिएः

1) शोध परियोजना की प्रारंभिक उक्ति तैयार की जानी चाहिए।

2) उक्ति से प्राप्त समस्त अवधारणाओं की सूची चिन्हित की जानी चाहिए।

3) अवधारणाओं के सभी आभासी और अल्पांष का विश्लेषण किया जाना चाहिए। इससे यह पता लग सकता है कि अवधारणाओं को वास्तविक रूप में कैसे प्रयोग किया जा रहा है तथा उनमें कितनी अवधारणाएँ वास्तविक रूप से स्वीकार्य हैं। अल्पांषों में कहीं कुछ विरोधाभास हो सकते हैं जिन्हें तलाषा और निष्चित किया जाना चाहिए।

4) इन अवधारणाओं के सम्बद्ध को प्रकाषित साहित्य का अध्ययन किया जाए जिसमें वह अवधारणाएँ प्रयोग की गई हैं ताकि उन अवधारणाओं के विभिन्न रूपों में हुए प्रयोग की जानकारी प्राप्त हो सके। यदि अवधारणा को सही रूप से परिभाषित नहीं किया जा रहा, तो सम्बद्ध साहित्य यह जानने में सहायता करेगा कि अमुक अध्ययन में वह अवधारणा कैसे प्रयोग की गई है। ऐसा संभव हो सकता है कि कहीं हमें अवधारणाओं के विषय में सोचने के लिए कुछ सहायक सामग्री प्राप्त हो तथा उस कारण सदस्यों के प्रति हमारे दृष्टिकोण में कुछ परिवर्तन भी आ जाए।

5) इसके पष्चात् अगला चरण उन तत्वों को खोज़ना है जो अन्य क्षेत्रों/विषयों में अन्य शब्दावलियों में ऐसे तत्वों से सम्बन्धित हों। तब यह मालूम होगा कि वह अवधारणाएँ जो आरंभ में सरल तथा सीधे होती हैं वह वास्तविक प्रचालन में वैसे नहीं होती। साथ ही, ऐसे चरण में शीघ्रता नहीं बरती जानी चाहिए। ऐसे प्रचालन की उपयोगिता इस तथ्य पर निर्भर करती है कि ऐसी अवधारणा अलग–अलग अध्ययनों में विभिन्न सैद्धान्तिक विचारों के साथ किस रूप में जोड़ी जाती है। गुडे तथा हाट के शब्दों में, "यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि प्रचालन का लक्ष्य अवधारणीय परिचालन में चतुराई का प्रदर्षन नहीं होता और न ही अपनी विद्वता का बाख़ान करना होता है, अपितु लक्ष्य यह होता है कि अल्पांषों को अलग–अलग कर तथा उन्हें पुनः जोड़ना होता है ताकि अनुसंधान में वह लाभकारी हो सकें।"

6) अवधारणा के सैद्धान्तिक उपयोगिता के खास उपयोग हेतु अन्तिम चरण अवधारणा हेतु उसके उच्चतर अथवा निम्नतर स्तर को सुनिष्चित करना होता है।

6.7 सिद्धान्त

सिद्धान्त निर्माण वैज्ञानिक कृति के अति महत्वपूर्ण और अति विशिष्ट कृति है अथवा नहीं। सिद्धान्त अथवा कृति की दृष्टि से जनसाधारण के लिए यह अति महत्वपूर्ण एवं अति विशिष्ट कृति होती है। इस रूप में, सिद्धान्त निर्माण, तथ्यों को क्रूर समझ के विपरीत, अनुभव का एक आयाम प्रतीक होता है। हमारे अनुभव का सार मात्र परिघटनाओं का अनुक्रमण नहीं होता, अपितु उनका अर्थपूर्ण सिलसिला अर्थात् तांता होता है, अर्थपूर्ण अपने भाव में तथा परिघटना की प्रतिरूपों में। वह इस रूप में परिणामी होते हैं क्योंकि वह एक दूसरे पर अपनी छाप छोड़ते हैं। प्रत्येक कृति के साथ एक विष्वास को इस दृष्टि से सम्बन्धित करना संभव होता है कि घटी कृति उस स्थिति को प्रबलता प्रदान करेगी जिसने

कृति को उत्पन्न किया है, तथा उस ज़रूरत अथवा हित को संतुष्टि देगा जिसने कृति को प्रेरित किया था। निष्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि तथ्य इसलिए तथ्य है कि पात्र पूर्वतया विश्लेषण द्वारा सामने आया है अथवा बिल्कुल नहीं आया है। यह सब कुछ न कुछ नाटकीय रूप में जान पड़ता है कि इसने जैसे यदि की स्थिति बन जाती है। अर्थात् कुछ न कुछ अनुपयोगी – अस्पष्ट और भ्रम आदि। इस दृष्टि से एक आदत को वैज्ञानिक कानून में एक अस्पष्ट सा विष्वास जोड़ा या समझा जा सकता है अथवा एक ऐसा सिलसिला अर्थात तांता जो हम इस रूप में मान लेते हैं मानो यह सब कुछ अनिवार्य तथा सार्वभौम हो।

"सिद्धान्त" शब्द में क्या निहित होता है, यह एक ऐसा भ्रम इस दृष्टि से है कि इसके सैद्धान्तिक स्तर को स्वयं सामाजिक वैज्ञानिक "सिद्धान्त" का नाम देने की भी चुनौती देते हैं। मुद्दे पर आते हुए यह कहा जा सकता है कि कुछ लोग तर्क देते हैं कि जिसे हम "सिद्धान्त" कहते हैं, उस में अधिकाधिक विस्तृत वर्गीकृत रूपरेखाएँ होती हैं। सामाजिक विज्ञानों में भ्रम और अधिक बढ़ जाता है जब यह शब्द आँकड़ों और सामग्री के उपयोग करने में प्रयोग में लाए जाते हैं। हम अक्सर प्रतिमानों, रूप तालिकाओं, बारीकियों, प्रारूपों तथा अवधारणीय रूपों के विषय में अध्ययन करते हैं। लेखकगण अक्सर इन शब्दों का उपयोग करते हैं – कई बार यह शब्द तो अन्तर को बदलने के रूप में प्रयोग किए जाते हैं और कई बार तो यह शब्द, जब "सिद्धान्त" का विवेचन किया जाता है, एक ही संदर्भ में प्रयोग किए जाते हैं।

6.7.1 सिद्धान्त की परिभाषा

सिद्धान्त और सिद्धान्त निर्माण की कार्यविधि खासी पिछड़ी हुई है, विशेष रूप से प्राक्कल्पना और प्राक्कल्पना की विधितंत्र के संदर्भ में। जो ठोस आनुभाविक क्रिया/कृत्य के स्तर से दूर, विशेष रूप से सांख्यिकीय उपकरणों के संदर्भ में, खासी अस्पष्टता महसूस की जाती है जिसके कारण अक्सर सूत्रों की शरण ली जाती है जो यह बताते हैं कि प्राक्कल्पना को प्रमाणित करना एक प्रकार की हस्तकला है और कि सिद्धान्त निर्माण करना एक प्रकार की कला है। दुर्भाग्यवष ऐसा प्रतीत होता है कि गुणात्मक प्रकार के वैज्ञानिक एवं बुद्धिजीवी इन दो अलग–अलग स्तर पर कार्य कर रहे हैं।

जोहान गालटुंग ने सिद्धान्त की परिभाषा करते हुए कहा है कि यह आषय अर्थात् निगम्यों के सम्बन्धों से निर्मित प्राक्कल्पनाओं का एक समूह होता है, अथवा अपेक्षाकृत औपचारिक रूप सेः

एक सिद्धान्त टी (T) एक रचना एच, आई (H, I) है जिसमेंः

एच (H) प्राक्कल्पनाओं का एक समूह है तथा

आई (I) एक सम्बन्ध का संकेत देता है जिसे हम "आषय" अथवा "निगम्य" कहते हैं।

ताकि "एच" "आई" के साथ ढीले–ढाले ढंग से जुड़ा है।

दूसरे शब्दों में, आदर्षतया एक सिद्धान्त पूर्ण रूप से कानूनों द्वारा बनता है। सामाजिक विज्ञानों में बहुत थोड़ी संख्या में (यदि तो) कानून होते हैं। ऐसे कानूनों के विकास की तलाष लगातार जारी है, यद्यपि उन्हें खोजना तथा उन्हें सामान्य रूप में भ्रम भी बना रहता है। हम यदि प्रमाणित कर भी पाते हैं तो वह सामान्यतया निम्नतर स्तर ही होता है जबकि सामान्यतया के अपेक्षाकृत उच्चतर के स्तरों को सरलता से प्रमाणित नहीं किया जा सकता। कानूनों/विधियों के आधार पर बना सिद्धान्त अपेक्षाकृत स्थायी होता है जबकि विभिन्न घटकों अर्थात् प्रज्ञप्तियों पर बने नियमों में परिवर्तन किया जा सकता है। भले ही, सिद्धान्त से जुड़े थोड़े–बहुत कानून/नियम होते हों अथवा हों, परंतु उससे हमारा कार्य समाप्त नहीं समझा जाता, क्योंकि उन थोड़ी–बहुत प्रतिज्ञाप्तियों के कारण हमें अनेक समस्याओं से

जूझना पड़ता है। उपयुक्त प्रज्ञप्तियाँ सम्भवतया प्रमाणिकता के बाद असार्थक हो सकती हैं और उन परिस्थितियों में उनका होना अथवा न होना बराबर हो जाता है। क्योंकि हम आज सामाजिक विज्ञानों में सामान्यता को प्राप्त करने में विफल होते हैं, इस कारण हमारे द्वारा बनाए गए सामान्य सम्बन्ध हल्के प्रतीत होते हैं।

नियमों के अभाव में, सामाजिक विज्ञान के सिद्धान्तों में अपेक्षाकृत अधिक प्रज्ञप्तियाँ ही मिलती हैं। इस तथ्य को देखने के लिए कि हम सिद्धान्त के विकास में कहाँ हैं, हम प्रज्ञप्तियों की सूची तैयार करने की प्रक्रिया को लाभकारी समझते हैं। प्रज्ञप्तियीय सूची सिद्धान्त निर्माण से पूर्व हमें उसके सिद्धान्त की परीक्षा का अवसर प्रदान करती है। प्रज्ञप्तियीय सिद्धान्त के समान नहीं होती, क्योंकि प्रज्ञप्तियाँ एक दूसरे से पूरी तरह सम्बन्धित नहीं होती। जब तक हम प्रज्ञप्तियीय सूची से सिद्धान्त नहीं बना लेते तब तक यह विषय सूची क्षेत्र में उसकी तस्वीर बनाने तक का कार्य करती है।

सिद्धान्तों में अविश्लेषित अंष भी होते हैं जिन्हें पूर्वधारणाएँ भी कहा जाता है तथा जिन्हें अस्थायी रूप से वैध रूप से स्वीकार भी किया जाता है यद्यपि उन्हें न तो सत्य समझा जाता है और न ही असत्य। फिर भी, उनका सुव्यक्त और सुस्पष्ट होना चाहिए। अधिसमय, सिद्धान्त में ये पूर्वधारणाएँ कम होती जाएँगीं, यद्यपि लगभग हर सिद्धान्त कुछ ऐसी पूर्वधारणाओं पर निर्भर करता है। पूर्वधारणाएँ गणितीय प्रमाणित स्वयंसिद्धियों के समान होती हैं। यह प्रदत्त होती हैं, इस रूप में नहीं कि उन का प्रमाण बार–बार इस प्रकार किया जाता है कि उन्हें यंत्रवत स्वीकार समझा जाए, अपितु इसलिए प्रदत्त होती हैं ताकि सिद्धान्त निर्माण संभव हो जिसे उनके परिणामों के कारण आंका जा सके। एम. ब्राडबैंक ने संकेत दिया है "स्वतःसिद्ध तो सिद्धान्त में अपने महत्व के कारण ही इस रूप में समझे जाते हैं। वह न तो स्वयं प्रमाणित होते हैं और न ही प्राधिकृत, परंतु ऐसे आनुभाविक रूप के नियम/कानून हैं जिनमें निहित, भले ही अस्थायी हो, सत्य पूर्णतया अन्य आनुभाविक दावों की भाँति सत्य दिखाई दें।

स्वतः सिद्धीय पूर्वधारणाओं की स्वीकारिता उन कुछ लोगों द्वारा नहीं मानी जाती जो यह तर्क देते हैं कि किसी भी तथ्य को बिना आनुभाविक नियमों के स्वीकार नहीं किया जाए। वह तो केवल उन्हीं पूर्वधारणाओं को स्वीकार करते हैं जिन्हें आगमिक रूप से स्थापित किया जा सके। यदि आरम्भ में इस तर्क को स्वीकार भी कर लिया जाए, तो भी आगमिक विवेक के लिए पूर्व के आधारतत्वों की ज़रूरत की समस्या तो रह ही जाएगी। सामग्री संग्रहण से पूर्व कुछ न कुछ सिद्धान्त निर्माण का भाव होता ही होता है।

6.7.2 सिद्धान्त की भूमिका : अवस्थिति के रूप में सिद्धान्त

सैद्धान्तिक व्यवस्था का एक मुख्य कार्य यह होता है कि यह अध्ययन किए जाने वाले तथ्यों के परिसर को सीमित करती है। किसी भी तथ्य/तत्व का अध्ययन भिन्न–भिन्न तरीकों से किया जा सकता है। एक फुटबाल की आर्थिक दायरे के अंतर्गत जाँच की जा सकती है जब हम इस खेल की माँग और आपूर्ति की शैली को सुनिष्चित करते हैं। परंतु हमें यह याद रखना चाहिए कि फुटबाल रूपी पात्र को रासायनिक शोध का विषय भी बनाया जा सकता है क्योंकि यह किन्हीं रसायनों का भी बना होता है। साथ ही, यह एक परिमाण अर्थात् पुंज भी होता है जिसे भौतिक रूप से देखा जा सकता है तथा जो विभिन्न दबावों और परिस्थितियों में भिन्न–भिन्न तरीकों/वेगों से गुज़रना होता है। इसके अतिरिक्त फुटबाल को अनेकों समाजषास्त्रीय रूप के कार्यकलापों जैसे संचारण, समूह संगठन आदि में भी देखा जा सकता है।

प्रत्येक विज्ञान तथा किसी व्यापक क्षेत्र का प्रत्येक विशिष्टीकरण वास्तविकता से अपने भाव निकालते हैं, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि किसी तथ्य के सभी पहलुओं की अपेक्षा कुछ खास पहलुओं

पर बल दिया जाए। केवल इसी आधार पर विज्ञान के कार्य को संचालनीय स्तर तक नियंत्रित किया जा सकता है। प्रत्येक क्षेत्र का अनुकूलन सीमित आकार के दायरे में ही कार्य कर सकता है जबकि उसकी अन्य मान्यताओं की उपेक्षा की जाती है।

6.7.3 संप्रत्ययीकरण और वर्गीकरण के रूप में सिद्धान्त

प्रत्येक विज्ञान अवधारणाओं के संगठन द्वारा ही संगठित होता है जो अध्ययन किए जा रहे लक्ष्यों और प्रक्रमों का संकेतकों का फल होते हैं, यह अवधारणाओं के बीच पारस्परिक सम्बन्ध होते हैं जिन्हें विज्ञान के तथ्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, ऐसे "षब्द" एक प्रकार से वह शब्दावली बन जाते हैं जिन्हें वैज्ञानिक प्रयोग करता है। जैसे–जैसे विज्ञान विकसित होता है, यह शब्दावली भी बदलती रहती है, क्योंकि इस प्रक्रिया में विभिन्न प्रकार के तत्व अपनी महत्ता प्राप्त कर लेते हैं। तथापि यह स्पष्ट है कि यदि ज्ञान सुव्यवस्थित किया जाना है तो उन तथ्यों को जिनका प्रेक्षण किया जाना है उन पर किसी न किसी प्रकार की क्रमबद्धता बनाना ज़रूरी बन जाता है। परिणामस्वरूप विज्ञान का एक मुख्य कार्य यह है कि वह वर्गीकरण, अवधारणाओं का संगठन, विशेषतया उन शब्दों की सुनिष्चित परिभाषाओं के ढाँचे का विकास करें।

6.7.4 सिद्धान्त का एक अन्य कार्य : संक्षेपण

सिद्धान्त का एक अन्य कार्य उन सब तथ्यों का संक्षेपण करना होता है जो अध्ययन हुए विषय के बारे में सबको जानकारी पहले ही होती है। इस प्रकार के संक्षेपण को प्रायः दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता हैः (1) आनुभव का सरलीकरण तथा (2) प्रज्ञप्तियों के बीच क्रम व्यवस्थाओं के सम्बन्ध।

यद्यपि वैज्ञानिक अपने अध्ययन क्षेत्र के विषय को सम्बन्धों की एक जटिल रचना समझता हो, उसका प्रतिदिन का कार्य किसी पूर्व कृति से जुड़ा होता हैः सामग्री/आँकड़ों का एक ऐसा सरल सा जोड़ जो अनुभव के सरलीकरण द्वारा अभिव्यक्त होता है। कीट विज्ञानी कीड़े–कीटों की प्रकृतियों के अध्ययन करते हुए उन्हें विभिन्न वर्गों में विभाजित करते हैं। समाजषास्त्री अथवा सामाजिक अनुविज्ञानी विभिन्न सामाजिक वर्गों में बच्चों के पालन–पोषण के पारस्परिक भेदों के आधार पर वर्गीकरण करते हैं। जनसंख्याविद् किसी अमुक समय के दौरान हुए जन्म और मृत्यु के आँकड़ों की तालिका प्रजनन की दर सुनिष्चित करने के लिए तैयार करता है। ऐसे तथ्य लाभकारी होते हैं तथा उन्हें साधारण अथवा जटिल सैद्धान्तिक सम्बन्धों में संक्षिप्त किया जा सकता है। इस चरण पर हुए संक्षेपण को सिद्धान्त नहीं कहा जाता। ऐसा संक्षेपण तो वैज्ञानिकों से पहले भी होता रहा है। मनुष्य का अस्तित्व ऐसे आनुभाविकीय प्रेक्षणों पर निर्भर करता हैः "लक्ष्य विफल होते रहते हैं", "लकड़ियाँ बहती रहती हैं", "अपरिचित प्रायः खतरनाक होते हैं", आदि वस्तुतः ऐसी ही प्रकार की प्रज्ञप्तियाँ होती हैं – कबीली प्रकार को सोच से लिप्त।

दूसरी ओर यह स्पष्ट है कि ऐसे कथन एक अथवा एक समूह के प्रेक्षणों से भी परे होते हैं। ऐसे कथन अपेक्षाकृत जटिल हो सकते हैं तथा कुछेक अवस्थाओं में ही सही हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त, जैसे ही ऐसे संक्षेपित कथन विकसित होते हैं, उनमें परस्पर सम्बन्ध देखना संभव होता है। नौसखियों का अनिष्चियी होना, एक मंत्री का विन्ययन करना, कर्मकाण्ड का परिषुद्ध किया जाना, उपाधि ग्रहण की क्रिया करना, बपतिस्मा आदि ऐसे ही कुछ तत्व हैं जिनके विषय में संक्षेपित प्रज्ञप्तियाँ व्यवस्थित की जा सकती हैं तथा जो एक दूसरे से सम्बन्धित रूप में भी देखी जा सकती हैं जैसे एक समूह (वर्ग) किसी व्यक्ति को एक स्तर प्रदान करता है, वर्गीय नियंत्रण को सुनिष्चित करने की शैली होती है, किसी वर्गीय एकता की समारोहनीय अभिव्यक्ति प्रस्तुत की जाती है आदि आदि।

एक बड़े पैमाने पर सिद्धान्त निर्माण के लिए कुछ शोधकर्ता किसी समझ विशेष की किन्हीं अनुभव के सरलीकरण को जोड़ने का प्रयास कर सकते हैं। समय–समय पर किसी भी विज्ञान प्रज्ञप्तियों के बीच संरचना के सम्बन्धों में परिवर्तन होते रहेंगे। न्यूटन द्वारा प्रतिपादित कार्य इसी प्रकार का एक उदाहरण है जैसा कि आइंस्टीन के आपेक्षिकता के सिद्धान्त के विषय में भी था। टैलकाट पारसन्स ने अपनी रचना, *स्ट्रक्चर ऑफ सोषल एक्षन*, में बताया है कि वैबर, दुखाईम तथा पैरेटो आदि ने एक पुरानी व्यवस्था से अपेक्षाकृत नई स्वीकार्य व्यवस्था में हुए मुख्य परिवर्तनों को भी दर्षाया था।

6.7.5 सिद्धान्त और तथ्य भविष्यवाणी

जब सिद्धान्त तथ्यों का संक्षेपीकरण करता है तथा तत्कालीन प्रक्षेणों के बाद की किसी सामान्य एकरूपता को बताता है तो ऐसा होना तथ्यों की भविष्यवाणी का संकेत होता है। इस प्रकार की भविष्यवाणी के अनेकों पहलू होते हैं। इनमें सबसे सुस्पष्ट ज्ञान से अज्ञान का बहिर्वेषन है। उदाहरणार्थ, हमने देखा है कि पाष्चात्य प्रौद्योगिकी के प्रत्येक ज्ञात रूप में, विशेषतया प्रारंभिक चरणों में मृत्यु दर जन्मदर के मुकाबले में अपेक्षाकृत अधिक होती है। अतः हम यह भविष्यवाणी कर सकते हैं कि यदि आदिवासीय संस्कृति में पाष्चात्य प्रौद्योगिकी आरंभ की जाती है तो यह प्रक्रिया पुनः शुरु हो जाती है। इसी प्रकार हम यह भी भविष्यवाणी कर सकते हैं कि उन क्षेत्रों में जहाँ पाष्चात्य प्रौद्योगिकी पहले ही शुरु कर दी गई है तो हम देखेंगे कि ऐसी प्रक्रिया पहले ही वहाँ घट चुकी है।

6.7.6 सिद्धान्त ज्ञान के मार्ग की दरारों का संकेत देती हैं

क्योंकि सिद्धान्त ज्ञात तथ्यों का संक्षेपण करता है तथा उन तथ्यों की भविष्यवाणी करता है जिन्हें अभी तक प्रेक्षित नहीं किया जा सका, इस कारण उसे उन क्षेत्रों की ओर संकेत देना चाहिए जिन्हें अब तक जाँचा नहीं गया। जैसा कि ऊपरलिखित है कि भविष्यवाणी रूपी तथ्य यह प्रस्तावित करते है कि हमें ज्ञान का परीक्षण कहाँ करना चाहिए। यदि सिद्धान्त किसी सामान्य सम्बन्ध का दर्षाता है जैसे कि आय और उपजाऊपन के विपर्यय सम्बन्ध में होता है, वहाँ हमें तुरंत नए तथ्यों के जानने की ज़रूरत पड़ती है। हमें आय वर्गीय समूहों को छोटी–छोटी श्रेणियों में विभाजित करना होता है जहाँ कि व्यय की बजाए उच्च आय वर्ग में उपजाऊपन हो; हमें यह भी देखना पड़ता है कि क्या इस प्रकार का तरीका शहरी क्षेत्रों की भांति ग्रामीण क्षेत्रों में भी देखा जा सकता है या ऐसी शैली अन्य देषों में भी होती हैं अथवा हम आय और उपजाऊपन के बीच हुए ऐसे सम्बन्धों को अतीत में भी अध्ययन कर सकते हैं।

6.8 निगमन और आगमन

सिद्धान्त निर्माण में निगमन और आगमन दोनों ही अपनी भूमिका निभाते हैं। ऐसा तभी होता है जब इस सिद्धान्त से कानून/नियम से प्रतिज्ञप्ति से प्राक्कल्पना के परीक्षण की ओर बढ़ते हैं। ऐसा बढ़ना उच्चतर से निम्नतर की ओर बढ़ना होता है – यह प्रक्रिया वस्तुतः निगमनात्मक की प्रक्रिया होती हैं इस प्रकार के निगमन का उसके पूर्व निगमन से अलग रूप में समझा जाना चाहिए जहाँ से हम कृत्रिम सम्बन्धों से प्रमाणित सम्बन्धों की ओर बढ़ते हैं। निगमन हमें सिद्धान्त से प्राक्कल्पना के परीक्षण में बढ़ने के लिए सहायता तो करते हैं, यह हमें इस तथ्य का ज्ञान भी देते हैं कि सिद्धान्त के विभिन्न अंष किस आंतरिक रूप से एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। सिद्धान्त के सत्यापन में प्रज्ञप्तियों के आनुभाविक परीक्षणों तथा उनके क्रमबद्ध तार्किक परीक्षणों का आवेष्टन सम्मिलित होते हैं, केवल पहली युक्ति ही काफी नहीं होती। निगमन की मुष्किल यह होती है कि इसमें प्रयोग किया गया तर्क नियतिवाद का बोध दे सकता है। अर्थात हम संसार का निर्धारक निष्कर्ष लेना शुरु कर देते हैं। यदि ऐसा निष्कर्ष आंषिक रूप से

सत्य होता है तो ऐसा होना सिद्धान्त की सामान्य कठिनाई होती है, क्योंकि साधारणीकरण सिद्धान्त के पैटर्न का अनुकरण करने लगता है, न कि उससे पूर्णरूप से स्वतंत्र होता है।

सिद्धान्त निर्माण जो सिद्धान्त द्वारा प्राक्कल्पना के अन्वेषण पर आधारित साधारणीकरण के विचार से पनपता है वह उसके आगमनात्मक रूप को दर्षाता है। यदि प्राक्कल्पना की जाँच अस्तव्यस्त नहीं होता अर्थात् गड़बड़ाती नहीं है, उससे यह ज्ञात होता है कि प्रतिज्ञप्ति रूपी अनुरूपता सही है तथा प्रतिज्ञप्ति में निहित सम्बन्ध स्थापित करने वाले नियम तथा ऐसे ऊपरीय नियम भी स्वीकार्य हैं। इसके अतिरिक्त, कोई भी प्रतिज्ञप्ति जो अनेकों प्राक्कल्पनाओं को उदित करती है, यह इस तथ्य का संकेत होती है कि कोई भी एक प्राक्कल्पना किसी एक प्रतिज्ञप्ति को स्थापित नहीं करती, अपितु उसे समर्थन देती है। सिद्धान्त निर्माण के आगमनात्मक और निगमनात्मक अंष, सभी कार्यकलापों में, सिद्धान्त रचना, सिद्धान्त परीक्षण तथा सिद्धान्त परिवर्तन आदि में एक दूसरे के साथ सम्बन्धित होते हैं।

6.9 सिद्धान्त प्रमाणित करने के मार्ग में कठिनाइयाँ

सिद्धान्त कभी भी प्रमाणित रूप धारण नहीं करते। हम तो केवल प्राक्कल्पना की जाँच जो सिद्धान्त से उभरती है इसके साक्ष्य उपलब्ध कराते हैं कि सिद्धान्त सही नहीं है। इसकी संभावना अधिक होती है कि हमारे द्वारा एकत्रित सामग्री हमारी प्राक्कल्पनाओं का निरंतर समर्थन और फिर तब भी हमारा सिद्धान्त गलत हो। यह संभव है कि हमारी कथित प्राक्कल्पनाएँ हमारी सामग्री द्वारा समर्थित हों। फिर भी सामाजिक विज्ञान सिद्धान्तों के विषयों में कुछ तर्क दिए जा सकते हैं कि वह अप्रमाणित मान्यताओं पर आधारित होने के कारण निष्चितता अप्रमाणित हों। बिना अनावष्यक ढंग से विस्तृत किए, सामाजिक विज्ञान सिद्धान्तों के दावों को स्वीकार करना बेहतर होगा कि वह विभिन्न प्रकार की मान्यताएँ कुछ इस प्रकार पर बनी होंगी कि व्यक्ति विवेकीय तथा स्वस्वार्थी हैं, कि वह एक अनुमोदनीय प्राणी है, कि वह आक्रामक हैं, कि वह भीतरी मूल्यों में प्रेरित होता है अथवा वह प्रतिफल द्वारा प्रयोजित होता है। क्योंकि, ऐसी सभी मान्यताएँ आनुभाविक रूप से प्रमाणित नहीं हो सकतीं। इस कारण कोई भी शोधकर्ता ऐसी मान्यताओं की नींव पर स्थित ऐसे सिद्धान्त रचना की संरचना पर संदेह व्यक्त कर सकता है।

सामाजिक विज्ञान सिद्धान्त के साथ कुछ अन्य कठिनाइयाँ भी होती हैं। सामाजिक विज्ञान सिद्धान्त की प्रतिज्ञप्तियों की अवधारणाओं तथा उनकी प्रमाणित प्राक्कल्पनाओं के अपने अर्थ सदैव सुनिष्चित नहीं होते। यदि हम, अलगाववाद की अवधारणा को उदाहरण रूप में इसे लें तो अनेक सामाजिक वैज्ञानिक उसकी मानक तकनीकी पर असहमति व्यक्त करेंगे। वस्तुतः हमें यह अपेक्षा करनी चाहिए कि समाज के अनेक समूहों और व्यक्तियों में अलगाववाद की अवधारणा का अर्थ रूप में समय–समय पर अलग–अलग लिया जाएगा। हमें यह समझना होगा कि सषक्त निगमनीय व्याख्या किसी अवधारणा/तत्व की प्रत्येक अवधारणा पर निर्भर करेगी जिसका एक सैद्धान्तिक तार्किक व्यवस्था में एक स्थायी सार्वजनिक अर्थ होगा। क्योंकि अनेक सामाजिक विज्ञान सिद्धान्तों में अपेक्षाकृत ऐसी स्थिति नहीं पनपती, इस कारण सामाजिक विज्ञान सिद्धान्त में आनुभाविक प्रमाणिकता एक कठिन कार्य बन जाता है। यहीं कारण है कि आलोचक किसी अध्ययन के निष्कर्ष को इस आधार पर अस्वीकार कर लेते हैं कि सिद्धान्त की अवधारणाएँ ठीक रूप से परिमाणित नहीं की गई है।

इस संदर्भ में हम परिमाण से जुड़े एक अन्य तथ्य को यहाँ जोड़ सकते हैं जो सामाजिक विज्ञानों के शोधकर्ताओं के बीच वैचारिक फूट का कारण होती हैं। एक दार्षनिक का विखण्डन सामाजिक विज्ञान में उनके बीच हो सकता है जिनमें एक तो संसार को वस्तुगत में तथा दूसरे इसे आत्मगत रूप में देखते

हैं। अवस्थिति में इस प्रकार का अन्तर अध्ययन में मापनी प्रविधियों की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति की ओर संकेत देगा। यदि कोई शोधकर्ता किसी अमुक अध्ययन को किन्हीं प्रक्रिया के अनुसार संचालित करता है तो उसके निष्कर्षों को वह लोग इस दृष्टि से स्वीकार करेंगे जो मापनी प्रक्रिया के उसे अपने दार्षनिक तरीके के अनुकूल मानते हैं परंतु वह लोग इस आधार पर अस्वीकार करेंगे जो ऐसे दार्षनिक तरीके में आस्था नहीं रखते। यहीं कारण है कि हम सिद्धान्तों की बहुसंख्या का अवलोकन करते हैं, यद्यपि, आनुभाविक परिघटनाओं की व्याख्या लगभग एक जैसी हो।

6.10 सारांष

सिद्धान्त प्रामाणिकता और सर्वोच्च सिद्धान्त और सिद्धान्तों के प्रतिफलों की कठिनाइयों के परिज्ञान के संदर्भ में प्रसिद्ध समाजषास्त्री राबर्ट मरटन ने सामाजिक विज्ञान में मध्यमार्गी सिद्धान्तों की चर्चा की है। मध्यमार्गी सिद्धान्त, जैसा कि इसके नाम से ज्ञात होता है इस तथ्य पर ज़ोर देता है जो आनुभाविक तत्वों को विपथगामी के रूप में लेता है, सामाजिक समूहों ने प्रचालन को स्वीकार करता है, तथा सामाजिक बोध की प्रक्रिया आदि को मान्यता देता है। मुख्यतया जोर इस पर दिया जाता है कि तत्व की व्याख्या को इस प्रकार सीमित किया जाए कि प्राक्कल्पनाओं को सुस्पष्ट किया जा सके तथा उनकी सामग्री और आँकड़ों पर एक सहमति बनाई जा सके। मर्टन को इस तथ्य की आषा है कि समाज में पनपी संस्थाओं से जुड़े अलग–अलग सिद्धान्तों को अंततः एकत्रित किया जा सकेगा तथा उस के फलस्वरूप समाज में किसी सामान्य सिद्धान्त का सूत्रधार हो पाएगा।

6.11 बोध प्रष्न

1) अवधारणाओं की परिभाषा दीजिए। सामाजिक अनुसंधान में उनके महत्व की विवेचना कीजिए।

2) "अवधारणाएँ" सिद्धान्त निर्माण के निर्माणीय स्तम्भ होती हैं" चर्चा कीजिए।

3) "सिद्धान्त" की परिभाषा दीजिए। अनुसंधान रचना में सिद्धान्त की भूमिका का विवेचन कीजिए।

6.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

गुडे, विलियम जे. तथा पाल के., हाट, *मैथड्स इन सोषल रिचर्स,* मैकग्रा–हिल, सिंगापुर, 1981

लुण्डबर्ग, जॉर्ज, *सोषल रिचर्स,* लॉगमैन ग्रीन, न्यूयार्क, 1946

मेनहीम, हेनरी ली., *सोषिलाजिकल रिसर्च फिलोस्फी एंड मैथड्स,* दी डारसी प्रेस, इलयूनास, 1977

पीयरसन, कार्ल, *ग्रामर ऑफ साईन्स,* जे.एम. डेन्ट एंड संस, लंदन, 1951

सैलाटिज़ फ्लोर, मैरी जहोदा, मार्टिन डयूटस्थ एवं स्टुअर्ट डब्ल्यू. कुक, *रिसर्च मैथड्स इन सोषल रिलेषन्स,* हाल्ट, राईनहार्ड विनस्टोन, 1976

यंग, पालिन, बी., *साइंटिफिक सोषल सर्वे एंड रिसर्च,* प्रिंटिंस हाल, नई दिल्ली, 1995